**ओ३म्**

**‘मूर्तिपूजा के इतिहास पर महर्षि दयानन्द का उपदेश’**

**प्रस्तुतकर्ताः मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून। (rishi2upesh Unicode 23 8 15)**

 **महर्षि दयानन्द के इतिहास विषयक एक उपदेश जिसमें उन्होंने महाभारत काल व उसके बाद देश में धर्म व अध्ययन अध्यापन पर प्रकाश डाला है, को हमनें अपने पूर्व लेख में प्रस्तुत किया था। उसी क्रम में उसके बाद देश में वेदाध्ययन को छोड़कर मूर्तिपूजा के प्रचलन विषयक घटी घटनाओं के इतिहास पर उनके उपदेश को आज के लेख में किंचित सम्पादन के साथ पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं। महर्षि का उपदेश आरम्भ करते हैं:**

**मनमोहन कुमार आर्य**

 एक द्रविड़ देश के ब्राह्मण काशी में आकर, यहां एक गौड़पाद पण्डित थे, उनके पास व्याकरण पूर्वक वेद पर्यन्त विद्या पढ़ी थी जिसका नाम शंकराचार्य था। वह बड़े पण्डित हुए थे, उन्होंने विचार किया कि यह बड़ा अनर्थ हुआ कि नास्तिकों का मत आर्यावर्त्त देश में फैल गया है और वेदादिक संस्कृत विद्या का प्रायः नाश ही हो गया है, अतः नास्तिक मत का खयडन और वेदादिक सत्य संस्कृत विद्या का (मण्डन होना चाहिए)। वह अपने मन से ऐसा विचार करके सुधन्वा नाम का राजा था, उसके पास चले गए, क्योंकि बिना राजाओं के सहाय से यह बात नहीं हो सकेगी। वह सुधन्वा राजा भी संस्कृत में पण्डित था और जैनों के भी संस्कृत के सब ग्रन्थों को पढ़ा था। सुधन्वा जैन के मत का था, परन्तु बुद्धि और विद्या के होने से अत्यन्त विश्वास नहीं था, क्योंकि वह संस्कृत भी पढ़ा था और उसके पास जैन मत के पण्डित भी बहुत थे। फिर शंकराचार्य ने राजा से कहा कि आप सभा करावें और उनसे मेरा शास्त्रार्थ हो और आप सुनें। फिर जो सत्य हो उसको मानना चाहिए। उसने स्वीकार किया और सभा भी कराई। उसके अपने पास जैन मत के पण्डित थे और भी दूर-दूर से पण्डित जैन मत के बुलाए, फिर सभा हुई। उसमें यह प्रतिज्ञा हो गई कि हम वेद और वेद मत का स्थापन करेंगे और आपके मत का खण्डन तथा उन पण्डितों ने ऐसी प्रतिज्ञा की कि वेद और वेदमत का हम खण्डन करेंगे और अपने मत का मण्डन। सो उनका परस्पर शास्त्रार्थ होने लगा। उस शास्त्रार्थ में शंकराचार्य का विजय हुआ और जैन मत वाले पण्डितों का पराजय हो गया। फिर कोई युक्ति जैनों की नहीं चली, किन्तु शंकराचार्य ने कहा कि जैनों का आजकल बड़ा बल है और वेद मत का बल नहीं है। इससे शास्त्रार्थ तो हम करने को तैयार हैं, परन्तु कोई उपाधि करे अथवा शास्त्रार्थ ही न करें, तो हमारा कुछ बल नहीं। इसमें आप लोग प्रवृत्त होंवे कि कोई अन्याय करे, उसकी आप लोग शिक्षा करें। सो राजा ने उस बात को स्वीकार किया कि वह हम करेंगे, परन्तु हमारे छः राजा सम्बन्धी हैं, उनके पास हम चिट्ठी लिखते हैं और आपको भी शास्त्रार्थ करने के हेतु भेजेंगे। फिर वह भी यदि मिल जायें तो बहुत अच्छी बात है। फिर शंकराचार्य उन राजाओं के पास गए और सभा हुई, फिर जैन मत के पण्डितों का पराजय हो गया। फिर वे छः भी सुधन्वा से मिले ओर सबकी सम्मति से संस्कार भी हुआ तथा वेदोक्त कर्म भी करने लगे।

 **तब तो आर्यावर्त्त में सर्वत्र यह बात प्रसिद्ध हो गई कि एक शंकराचार्य नामक संन्यासी वेदादिक शास्त्रों के पढ़ने वाले बड़े पण्डित हैं जिससे बहुत जैन लोगों के पण्डित परास्त हो गए। फिर उन सात राजाओं ने शंकराचार्य की रक्षा के हेतु बहुत भृत्य तथा सेवक और सवारी भी रख दी और सबने कहा कि आप सर्वत्र आर्यावर्त्त में भ्रमण करे और जैनों का खण्डन करें।** इसमें यदि कोई अन्याय से जबर्दस्ती करेगा तो उसको हम लोग समझा लेवेंगे। फिर शंकराचार्य जी ने जहां-जहां जैनों के पण्डित और अत्यन्त प्रचार था, वहां-वहां भ्रमण किया और उनसे सर्वत्र शास्त्रार्थ किया। शास्त्रार्थें में सर्वत्र जैन लोगों का पराजय ही होता गया, क्योंकि दो तीन दोष उन (जैनियों) के बड़े भारी थे। एक तो ईश्वर को नहीं मानना, दूसरा वेदादिक सत्य शास्त्रों का खण्डन करना और तीसरा जगत् स्वभाव ही से होता है, इसका रचने वाला कोई नहीं, इत्यादि अन्य भी बहुत दोष हैं, उन दोषों को जैन मत के खण्डन मण्डन में विस्तार से (कहेंगे)। फिर जितनी जैनों के मन्दिर में मूर्तियां थी, उनको सुधन्वादिक राजाओं ने तोड़वा डाली और कुवों (में डलवा दी) वा पृथिवी में गाड़ दी, सो आज तक जैनों की वे टूटी और बिना टूटी मूर्तियां पृथिवी खोदने से निकलती हैं। परन्तु मन्दिर नहीं तोड़े गए, क्योंकि शंकराचार्य और राजा लोगों ने विचार किया कि मन्दिरों को तोड़ना उचित नहीं है। इनमें वेदादिक शास्त्रों के पढ़ने के हेतु पाठशाला करेंगे, क्योंकि लाखों करोड़ों रूपये की इमारतें हैं, इसको तोड़ना उचित नहीं। और कुछ-कुछ गुप्त रूप से जैन लोग जहां-तहां रह गए थे सो आज तक देखने में आर्यावत्र्त देश में आते हैं। इसके बाद सर्वत्र वेदादि ग्रन्थों के पढ़ने और पढ़ाने की इच्छा बहुत मनुष्यों को हुई। शंकराचार्य, सुधन्वादि राजा तथा और आर्यावर्त्तवासी श्रेष्ठ लोगों ने विचार किया कि विद्या का प्रचार अवश्य करना चाहिए। वह विचार ही करते रहे। **इतने में 32 वा 33 बरस की उमर में शंकराचार्य का शरीर टूट गया।** उनके मरने से सब लोगों का उत्साह भंग हो गया। **यह भी आर्यावर्त्त देशवालों का बड़ा अभाग्य था, यदि शंकराचार्य दश वा बारह बरस भी और जीते तो विद्या का प्रचार यथावत् हो जाता। फिर आर्यावत्र्त की ऐसी दुर्दशा कभी नहीं होती, क्योंकि जैनों का खण्डन तो हो गया, परन्तु विद्या प्रचार यथावत् नहीं हुआ।** इससे मनुष्यों को यथावत् कर्तव्य और अकर्तव्य का निश्चय नहीं होने से मन में सन्देह ही रहा। कुछ तो जैनों के मत का संस्कार हृदय में रहा और कुछ वेदादिक शास्त्रों का भी। यह बात इक्कीस या बाइस सौ बरस पूर्व की है। इसके पीछे 200 वा 300 वर्षों तक साधारण पढ़ना और पढ़ाना रहा।

 फिर उज्जैन में विक्रमादित्य राजा कुछ अच्छा हुआ। उसने राजधर्म का कुछ-कुछ प्रकाश किया और बहुत कार्य न्याय से होने लगे थे। उसके राज्य में प्रजा को सुख भी मिला था, क्योंकि विक्रमादित्य तेजस्वी, बुद्धिमान्, शूरवीर तथा धर्मात्मा था, इससे कोई और अन्याय नहीं करने पाता था। परन्तु वेदादिक विद्या का प्रचार उसके राज्य में भी यथावत् नहीं होता था। उसके पीछे ऐसा राजा नहीं हुआ, किन्तु साधारण होते रहे। फिर विक्रमादित्य से 500 वर्ष के पीछे राजा भोज हुए। उसने संस्कृत का प्रचार किया, अतः नवीन ग्रन्थों की रचना और प्रचार किया था वेदादि ग्रन्थों का नहीं। परन्तु कुछ-कुछ संस्कृत का प्रचार राजा भोज ने ऐसा कराया था कि चाण्डाल और हल जोतने वाले भी कुछ-कुछ लिखना पढ़ना और संस्कृत भी बोलते थे। देखना चाहिए कि कालिदास गड़रिया था, परन्तु श्लोकादिक रच लेता था और राजा भोज भी नये-नये श्लोक रचने में कुशल था। कोई एक श्लोक भी रच के उनके पास ले जाता था, उसका प्रसन्नता से सत्कार करता था और जो कोई ग्रन्थ बनाता था तो उसका बड़ा भारी सत्कार करता था। फिर बहुत मनुष्य लोग लोभ से नए ग्रन्थ रचने लगे, उससे वेदादिक सनातन पुस्तकों की अप्रवृत्ति प्रायः हो गई। **संजीवनी नाम का इतिहास विषयक ग्रन्थ राजा भोज ने बनाया, उसमें बहुत पण्डितों की सम्मति है। उसमें यह बात लिखी है कि तीन ब्राह्मण पण्डितों ने ब्रह्मवैवत्र्तादिक तीन पुराण रचे थे। उनसे राजा भोज ने कहा कि और के नाम से तुमको ग्रन्थ रचना उचित नहीं था। संजीवनी ग्रन्थ में महाभारत की बात लिखी है कि कितने हजार श्लोक 20 बरस के बीच में व्यास जी का नाम करके लोगों ने मिला दिए हैं। ऐसे ही महाभारत का पुस्तक बढ़ेगा तो एक ऊंट का भार हो जायगा।** और यदि ऐसे ही लोग दूसरे (महर्षि व्यास आदि) के नाम से ग्रन्थ रचेंगे तो बहुत भ्रम लोगों को हो जायगा। अतः उस संजीवनी ग्रन्थ में राजा भोज ने अनेक प्रकार की बातें उनके समय में विद्यमान पुस्तकों के विषय में और देश के वर्तमान के विषय में तथ्य पूर्ण इतिहास सम्मत लेख लिखे हैं। **बटेश्वर के पास होलीपुरा एक गांव है, उसमें चैबे लोग रहते हैं, वह जानते हैं कि जिसके पास वह इतिहास विषयक वह संजीवनी ग्रन्थ है, परन्तु वह पण्डित लिखने वा देखने को किसी को नहीं देता, क्योंकि उसमें सत्य-सत्य बात लिखी है। उसके प्रसिद्ध होने से पण्डितों की आजीविका नष्ट हो जाती है। इस स्वार्थरूपी भय से वह पण्डित उस ग्रन्थ को प्रसिद्ध नहीं करता। ऐसे ही आर्यावर्त्त निवासी मनुष्यों की बुद्धि क्षुद्र हो गई है कि अच्छा पुस्तक वा कोई इतिहास, उसको छिपाते चले जाते हैं। यह इनकी बड़ी मूर्खता है क्योंकि** **अच्छी बात जो लोगों के उपकार की हो, उसको कभी न छिपाना चाहिए।**

 फिर राजा भोज के पीछे कोई अच्छा राजा नहीं हुआ। उस समय में जैन लोगों ने जहां-तहां मूर्तियां मन्दिरों में प्रसिद्ध की और वे कुछ-कुछ प्रसिद्ध भी होने लगे, **तब ब्राह्मणों ने विचार किया कि इन जैनों के मन्दिरों में नहीं जाना चाहिए, किन्तु ऐसी युक्ति रचें कि हम लोगों की आजीविका जिससे हो।** फिर उन्होंने ऐसा प्रपंच रचा कि हमको स्वप्न आया है, उसमें महादेव, नारायण, पार्वती, लक्ष्मी, गणेश, हनुमान, राम, कृष्ण, नृसिंह ने स्वप्न में कहा है कि हमारी मूर्ति स्थापन करके पूजा करें तो पुत्र, धन, नैरोग्यादिक पदार्थों की प्राप्ति होगी। जिस-जिस पदार्थ की इच्छा करेगा, उस-उस पदार्थ की प्राप्ति उसको होगी। फिर बहुत मूर्खों ने मान लिया और मूर्ति स्थापन करने को कोई-कोई घनी पुरुष लगा। फिर पूजा और आजीविका भी उनकी (मूर्तियों की) होने लगी। एक की आजीविका देख के दूसरा भी ऐसा करने लगा। और किसी महाधूर्त ने ऐसा किया कि मूर्ति को जमीन में गाड़ के प्रातः काल उठके कहा कि मुझको स्वप्न हुआ है। फिर उनसे बहुत लोग पूछने लगे कि कैसा स्वप्न हुआ है, तब उसने उनसे कहा कि देव कहता है कि मैं जमीन में गड़ा हूं और दुःख पाता हूं, मुझको निकाल के मन्दिर में स्थापन करें और तू ही पुजारी हो तो मैं सब काम सब मनुष्यों का सिद्ध करूंगा। फिर वे विद्याहीन मनुष्य उससे पूछते थे कि वह मूर्ति कहां है? जो तुम्हारा स्वप्न सत्य है तो तुम दिखलाओ। तब जहां उसने मूर्ति गाड़ी थी वहां सबको ले जाकर भूमि खोद कर वह मूर्ति निकाली। सबने देख के बड़ा आश्चर्य किया और सबने उससे कहा कि तू बड़ा भाग्यवान् है और तुझ पर देवता की बड़ी कृपा है। इएलिए हम लोग धन देते हैं, इस धन से मन्दिर बनाओ। इस मूर्ति का उसमें स्थापन करो। तुम इसके पुजारी बनो और हम लोग नित्य दर्शन करेंगे। तब तो उसने प्रसन्न होके वैसा ही किया और उसकी आजीविका भी अत्यन्त होने लगी। उसकी आजीविका को देख के अन्य पुरुष भी ऐसी धूर्तता करने लगे और विद्याहीन पुरुष उसकी मान्यता व प्रतिष्ठा करने लगे। **फिर प्रायः मूर्ति पूजन आर्यावर्त्त में फैला।**

 **महर्षि दयानन्द ने मूर्ति पूजा के भारत वा आर्यावर्त्त में प्रचलन का यह वृतान्त अपने विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्कारण में सन् 1874 में प्रस्तुत किया था। सारा देश जिसमें सभी मूर्ति पूजक भी शामिल है, इन तथ्यों को नहीं जानता। सत्य को जानना व मानना तथा असत्य को छोड़ना व दूसरों से छुड़वाना ही मनुष्य जीवन का एक उद्देश्य है। इसी उद्देश्य से सत्यार्थ के प्रकाश के लिए महर्षि दयानन्द का यह उपदेश प्रस्तुत कर रहे हैं। आशा है कि पाठक इतिहास के इस भूले बिसरे पृष्ठ को जानकर लाभान्वित होंगे। इसके बाद महर्षि दयानन्द ने विदेशी विधर्मियों के भारत आगमन, मन्दिरों को लूटने और मूर्तियों को तोड़ने आदि की अनेक घटनाओं पर प्रकाश डाला है जिनको आगामी लेखों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।**

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**